16

अपना-पराया

एलर्जी = (चिकित्सा-विज्ञान का शब्द है) किसी विशेष वस्तु या स्थिति का शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना। किसी पदार्थ (जैसे फूल का पराग या धूल आदि) के प्रति शरीर की अति संवेदनशील प्रतिक्रिया।

जब कोई व्यक्ति हमारे घर का दरवाज़ा खटखटाता है, तो हम उसको पहचानने का प्रयास करते हैं। यदि हम उसे जानते हैं, तो हम उसका स्वागत करते हैं। यदि नहीं, तो दरवाज़ा ही नहीं खोलते। वह पराया होता है, इसीलिए उसे अंदर नहीं आने देते। इसी प्रकार, बाज़ार से जब हम कोई चीज़ ख़रीदकर घर ले आते हैं, तो वह हमारी हो जाती है, बाकी सब परायी। इसी प्रकार क्या आप जानते हैं कि हमारा शरीर-तंत्र भी अपने-पराए की पहचान करता है ? हाँ, करता तो है, लेकिन कैसे? कुछ अलग ढंग से। आइए, इस पाठ में हम इस पहचान करने की शरीर-तंत्र की क्षमता और उसके व्यवहार के ढंग को जानें।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप—

- शरीर में होने वाले कुछ विकारों के वैज्ञानिक कारण बता सकेंगे;
- रोगाणुओं के हमले और उनके बचाव के लिए शरीर की सुरक्षा-व्यवस्था का उल्लेख कर सकेंगे;
- रोगों से बचाव में टीकों के महत्त्व को रेखांकित कर सकेंगे;
- एड्स जैसी घातक बीमारियों और उनसे बचाव के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- ज्ञानेंद्रियों के द्वारा होने वाले संक्रमणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर बचाव के लिए उपाय लिख सकेंगे;
- साहित्यिक और वैज्ञानिक भाषा में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

टिप्पणी

16.1 मूल पाठ

अपना-पराया

आपकी उँगली में कभी कोई काँटा अवश्य गड़ा होगा। उस काँटे को आप अपनी चुटकी, चिमटी अथवा सुई से निकाल देते हैं। यदि काँटे का कुछ अंश त्वचा में ही गड़ा रह जाए, तो वहाँ गाँठ-सी बन जाती है। यह गाँठ प्रायः सूखकर निकल जाया करती है और उसी के साथ काँटा भी निकल जाता है। कभी-कभी त्वचा में रह गए काँटे के स्थान पर फोड़ा बन जाता है, जिसके फूटने पर मवाद के साथ काँटे से छुटकारा मिल जाता है।

आपकी आँख में कभी धूल अथवा कोयले का कण चला गया होगा। ऐसी स्थिति में आपकी आँखों से आँसू निकलने लगते हैं, जो उस कण को बहाकर बाहर निकाल देने का प्रयास करते हैं। यदि इस प्रकार भी कण आँख से नहीं निकलता, तो चिकित्सक की सहायता लेनी पड़ती है, क्योंकि कण की चुभन चैन से नहीं बैठने देती।

छींकें सभी को आती हैं। स्वस्थ अवस्था में भी दिन में एक-दो छींकें आ जाना कोई विचित्र बात नहीं। नाक के भीतर ज़रा-सी उत्तेजना हुई नहीं कि छींक आई। रसोई में मसालों के भुनने से छींक आ जाती है। कुछ व्यक्तियों को इत्र अथवा ख़ुशबूदार तेलों से भी छींक आ जाती है। यही नहीं, छींकों के साथ-साथ कभी-कभी आँख और नाक से पानी भी बहने लगता है।

चित्र 16.1

छींक आना और नाक से पानी का बहना शरीर की स्वाभाविक प्रतिरक्षात्मक प्रक्रियाएँ हैं। इनके द्वारा शरीर उन तमाम बेमेल और हानिकर पदार्थों को बाहर निकाल फेंकने की चेष्टा करता है, जो वायु द्वारा नाक के भीतर चले जाते हैं। हमारे शरीर की यह सुरक्षा-व्यवस्था हमें विभिन्न प्रकार की बीमारियों और कष्टों से बचाती है।

मुख के भीतर जीभ एक द्वारपाल जैसा कार्य करती है। खाने-पीने के प्रत्येक पदार्थ का स्वाद लेकर वह उसे परख लेती है। कड़वे और दुःस्वाद पदार्थ को हमारी जीभ प्रायः भीतर ले जाने से इनकार कर देती है। भोजन के ग्रास में भूल से आया हुआ कोई बाल अथवा कंकड़-पत्थर प्रायः जीभ की पहुँच से बच नहीं पाता।

खाई हुई प्रत्येक वस्तु तब तक शरीर का अंश नहीं बनती, जब तक आमाशय और अंतड़ी उसे पचाकर रक्त में नहीं पहुँचा देते। कभी-कभी खाई हुई वस्तु को आमाशय स्वीकार नहीं करता और उसे उल्टी के रूप में शरीर से बाहर निकाल फेंकता है। इस तरह पेट अथवा आमाशय भी एक प्रकार से द्वारपाल है।

शब्दार्थ

त्वचा = खाल, शरीर की सबसे ऊपरी परत
मवाद = फोड़े से निकलने वाला स्राव
चिकित्सक = चिकित्सा करने वाला; डॉक्टर
विचित्र =अनोखी
उत्तेजना = सुरसुराहट
इत्र = खुशबूदार द्रव, सेंट,
स्वाभाविक = आदतन होने वाली
प्रतिरक्षात्मक = अपना बचाव करने वाली
प्रक्रियाएँ = कार्य करने का प्रकार
हानिकर = नुकसान पहुँचाने वाले
चेष्टा = प्रयास, कोशिश
कष्ट = तकलीफ़
द्वारपाल = वह व्यक्ति, जो दरवाज़े पर रहकर आने-जाने वालों पर निगाह रखे; पहरेदार; गेटकीपर
दुःस्वाद = बुरे स्वाद वाले
ग्रास = कौर

टिप्पणी

प्रतिक्रिया = किसी कार्य के जवाब में हुआ कार्य
सुरक्षात्मक = बचाव करने वाली
अवशोषित होना = घुल-मिल जाना, सोख लिया जाना
अवांछित = अनचाही
प्रविष्ट = घुसना

असंख्य = अनगिनत
रोगाणु = रोग के अणु; वे सूक्ष्म जीवाणु, जो बीमारी का कारण होते हैं
आश्रय = रहने/ठहरने की जगह
ऊतक = एक जैसा काम करने वाली कोशिकाओं (सेलों) के समूह से बने पिंड; टिश्यू
प्रजनन = संतान की उत्पत्ति; अपने जैसे जीवों को पैदा करना

देह = शरीर
दुर्ग = किला
घात लगाना = हमला करने के लिए तैयार होना
सूक्ष्म = बहुत छोटे
श्लेष्मा = चिपचिपा लसदार पदार्थ, जो नाक से बहकर निकलता है
वायु नली = साँस की नली

शरीर में होने वाली जिन प्रतिक्रियाओं का ऊपर उल्लेख हुआ है, वे किसी-न-किसी रूप में शरीर की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ हैं। ये प्रतिक्रियाएँ बाहरी बेमेल अथवा हानिकर पदार्थों को शरीर में अवशोषित होने से रोकती हैं। शरीर का प्रयास होता है कि अवांछित वस्तु को भीतर प्रविष्ट न होने दे और यदि किसी प्रकार भीतर चली भी जाए, तो उसे शरीर से बाहर निकाल फेंके।

वातावरण में असंख्य रोगाणु होते हैं। ये हमारे शरीर में प्रवेश पाने का प्रयत्न करते हैं, ताकि इन्हें आश्रय के साथ-साथ भोजन भी मिल सके। शरीर के ऊतकों को खा-खाकर ये पनपते-बढ़ते और प्रजनन करते हैं। इनके प्रभाव से भाँति-भाँति के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर इन रोगाणुओं को भीतर प्रविष्ट होने से रोकने का प्रयत्न करता है और उनसे अनेक रूप से लड़ता-भिड़ता है।

त्वचा, देह रूपी दुर्ग की बाहरी दीवार है। यह दीवार शरीर की मुख्यतः दो प्रकार से रक्षा करती है। प्रथम, यह शरीर की नमी को भाप बनकर उड़ जाने से रोकती है। दूसरे, वायु और वस्त्रादि के स्पर्श से अपने ऊपर आकर जमने वाले असंख्य रोगाणुओं को यह बाहर ही रोके रहती है। परंतु, ये रोगाणु भी घात लगाए बैठे रहते हैं कि कब कहीं त्वचा कटे या फटे और ये भीतर घुसें। मल-मलकर नहाते समय हम अनजाने ही इन सूक्ष्म रोगाणुओं को धो-धोकर त्वचा से हटाते रहते हैं।

चित्र 16.2

साँस लेते समय वायु के साथ भाँति-भाँति के रोगाणु हमारी नाक द्वारा भीतर जाते हैं। इनमें से कुछ को तो नाक के बाल ही भीतर जाने से रोक देते हैं। कुछ रोगाणु नाक के भीतर के श्लेष्मा (लसदार स्राव) में चिपककर फँस जाते हैं। ऐसा ही श्लेष्मा फेफड़ों के भीतर की वायुनलियों में भी होता है और वायु द्वारा आए हुए कुछ रोगाणु इसमें चिपक जाते हैं। बलगम के रूप में फेफड़ों से बाहर निकलने वाला यही श्लेष्मा अपने साथ रोगाणुओं को भी बाहर निकाल फेंकता है।

हमारे भोजन, दूध, पानी आदि में लुक-छिपकर अनेक प्रकार के रोगाणु पहले मुँह में और फिर मुँह से आगे आहार-नली में पहुँच जाते हैं। मुँह में बनने वाली लार अन्य कई कार्य करने के साथ-साथ कुछ हद तक रोगाणुओं को भी नष्ट करती है। जो रोगाणु आगे पहुँच जाते हैं, उन्हें आमाशय अपने अम्ल से नष्ट कर देता है। इस अम्ल का अनुभव कदाचित् आपको तब हुआ होगा, जब भरा पेट दब जाने से भोजन का कुछ अंश उल्टा चलकर मुँह में आ जाता है और उल्टी हो जाती है।

हमने देखा है कि शरीर की सुरक्षा में पहला योगदान त्वचा द्वारा और नाक, फेफड़े, मुँह और आहार-नली की भीतरी परतों द्वारा होता है, जो रोगाणुओं को ऊतकों में प्रवेश

टिप्पणी

करने से रोकती हैं। इन परतों के कटने-फटने पर अथवा इनके कमज़ोर हो जाने पर रोगाणु शरीर के ऊतकों में पहुँच जाते हैं। अतिसूक्ष्म विषाणु (वाइरस) तो पतली त्वचा तथा भीतरी समूची परतों को भी भेदकर घुस जाते हैं। पर, जो भी हो, इनका मुकाबला करने के लिए शरीर की सुरक्षा- व्यवस्थाएँ भी सक्रिय हो जाती हैं।

अनेक संक्रमण पूरे शरीर में न फैलकर स्थानीय होते हैं। कल्पना कीजिए कि आपके हाथ की खाल कहीं कट गई है या आपने बहुत ज़्यादा खुजला लिया है। तब पहले से ही त्वचा पर जमे अथवा वायु आदि के स्पर्श से आए हुए रोगाणु भीतर प्रवेश कर जाते हैं। अब ये ऊतकों को खा-खाकर पनपने और बढ़ने लगते हैं। हमारा शरीर भी इनके प्रति निष्क्रिय नहीं होता। रक्त की श्वेत कणिकाओं की सेना सतर्क हो जाती है और रोगाणुओं में से निकले कुछ रासायनिक पदार्थों का सुराग पाकर यह उसी ओर धावा बोल देती है। इस सेना को रोगाणुओं के संक्रमण-स्थल पर जल्दी से पहुँचाने के लिए आसपास की रक्त-नलियाँ फूल जाती हैं, ताकि ज़्यादा रक्त पहुँचे। ज़्यादा रक्त पहुँचने से संक्रमण-स्थल अधिक लाल, कुछ सूजा हुआ और छूने पर गर्म मालूम पड़ता है। श्वेत-कणिकाएँ रक्त-नलिकाओं की दीवारों में से निकलकर आक्रमणकारियों की ओर बढ़ती हैं और उन्हें खा-खाकर नष्ट करने लगती हैं। इस युद्ध में दोनों पक्षों के सदस्य हताहत होते हैं। उनकी मृत देहों का मलबा तथा टूटे-फूटे ऊतक मवाद बन जाते हैं, जो घटनास्थल पर बने फोड़े-फुंसी के फूटने पर बाहर निकल जाते हैं।

चित्र 16.3

यदि प्रथम आक्रमण-स्थल पर ही रोगाणुओं का दमन न हो पाया, तो वे विजयी होकर आगे बढ़ते हैं। अब वे ऊतकों के तरल में पहुँच जाते हैं। ऊतक-तरल पहले तो अपनी ही विशेष नलियों में बहता है और फिर अंततः रक्त में जा मिलता है। अतः ऊतक-तरल में से होकर रक्त में पहुँचने से पहले हमारे शरीर को इन रोगाणुओं के विरुद्ध एक और मोर्चा बनाना होता है। इस मोर्चे का अनुभव कदाचित् आपको हुआ होगा। कभी-कभी काँख में या जाँघ में गिलटी फूल जाती है, जो दर्द करती है। यह गिलटी तभी बनती है जब हाथ या पैर में कोई फोड़े-फुंसी जैसा संक्रमण हो। गले की टॉन्सिलें भी ऐसी ही गिलटियाँ हैं, जो गले में संक्रमण के कारण फूल जाती हैं। इस प्रकार की सभी गिलटियाँ मानो हमारे शरीर की सुरक्षा-सेना की चौकियाँ हैं। इनके भीतर विशेष प्रकार की भक्षक-कोशिकाएँ होती हैं, जो रक्त की ओर बढ़ते हुए रोगाणुओं को नष्ट करती हैं। जब रोगाणु इन स्थानों पर भी विजयी होकर और आगे बढ़ते हैं, तब वे रक्त में पहुँच जाते हैं। अब रोगी की अवस्था गंभीर हो जाती है और इससे निबटने के लिए शरीर की कुछ अन्य सुरक्षा-व्यवस्थाएँ सक्रिय हो जाती हैं।

बलगम = कफ़
आहार नली = भोजन को आमाशय में पहुँचाने वाली नली
विषाणु = वायरस; रोग के विषैले अणु
सक्रिय = क्रियाशील; काम में लगे होना
संक्रमण = एक से दूसरे तक पहुँचना; रोगाणुओं का शरीर में पहुँचना; इन्फ़ेक्शन
स्थानीय = स्थान विशेष तक सीमित; एक ही जगह पर
निष्क्रिय = काम न करने वाला; क्रियाशील न होना
श्वेत कणिकाएँ = ख़ून में मौजूद रोग से लड़ने वाले सफ़ेद कण
सुराग पाकर = पता लगते ही; पता पाकर
धावा बोलना = टूट पड़ना; हमला करना
आक्रमणकारी = हमला करने वाली
हताहत = (हत और आहत) मरे हुए और घायल
मलबा = टूटी-फूटी चीज़ों का ढेर
ऊतक तरल = ऊतक के भीतर रहने वाला द्रव (तरल पदार्थ)
मोर्चा = किसी उद्देश्य या लक्ष्य के लिए एकजुटता
टॉन्सिल = गले की एक ग्रंथि
भक्षक कोशिकाएँ = रोगाणुओं को खा जाने वाली कोशिकाएँ
काँख = बगल

कई प्रकार के रोगाणुओं के प्रति भक्षक कोशिकाओं की सेना भी पर्याप्त नहीं होती। विषाणुओं (वाइरस) का तो ये भक्षक कोशिकाएँ कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। इन विषाणुओं के अतिरिक्त जीवाणुओं (बैक्टीरिया) से जो विष (टॉक्सिन) निकला करते हैं, वे भी भक्षक कोशिकाओं के प्रभाव से मुक्त होते हैं। अतः इन विषाणुओं तथा टॉक्सिनों से टक्कर लेने के लिए शरीर में कुछ विशेष रासायनिक अणु कार्य करते हैं, जिन्हें प्रतिपिंड (ऐंटीबाडी) कहते हैं। ये प्रतिपिंड मुख्यतः गिलटियों (लसिका ग्रंथियों) की कोशिकाओं से बनते हैं। प्रतिपिंडों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने अनुरूप केवल एक ही प्रकार के रोगाणु अथवा रोग-विष से टक्कर ले सकते हैं। अतः प्रत्येक रोगाणु और रोग-विष के लिए शरीर में पृथक् प्रकार के प्रतिपिंड चाहिए।

अधिकतर प्रतिपिंड शरीर में पहले से मौजूद नहीं होते। एक बार कोई रोगाणु अथवा रोग-विष शरीर में प्रविष्ट हो जाए और उससे प्रभावित होकर शरीर कम या ज़्यादा बीमार होकर ठीक हो जाए, तब शरीर में उस रोग से टक्कर ले सकने वाले प्रतिपिंड कुछ ही सप्ताह तक बने रह सकते हैं, जैसे इन्फ़्लूएंजा के। कुछ रोगों के प्रतिपिंड 10-15 वर्ष तक बने रह सकते हैं, जैसे चेचक के। जब उस रोग-विशेष का आक्रमण होता है, तब ये प्रतिपिंड तत्काल शरीर की रक्षा करके हमें उस रोग से बचाते हैं। हमारे शरीर की स्मरण-शक्ति ऐसी विचित्र है कि वह रोगाणु को लंबे अरसे के बाद भी पहचान लेती है।

रोगों के बचाव-टीकों में यही सिद्धांत काम में लाया जाता है। आज बीसियों प्रकार के टीके बन चुके हैं, जैसे – चेचक, पोलियो, टिटेनेस, डिफ़्थीरिया, हैजा, टाइफ़ाइड, क्षय रोग आदि से बचाव करने वाले। इन सबमें एक ही सिद्धांत है। दुर्बल किए गए रोगाणु अथवा उनका हल्का किया गया विष जान-बूझकर व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है। तब व्यक्ति का शरीर उन रोगाणुओं अथवा उस विष से जूझता है और उसके प्रतिपिंड बनाने लग जाता है। तदुपरांत, जब कभी रोग का वास्तविक संक्रमण होता है, तब पहले से ही मौजूद ये प्रतिपिंड रूपी रासायनिक हथियार शरीर को रोग से बचा लेते हैं।

कुछ लोगों को इत्र, धूल आदि से छींकें आती हैं और आँख-नाक से पानी बहने लगता है। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं, जिन्हें दूध पीने या अंडा खाने से भी परेशानी होने लगती

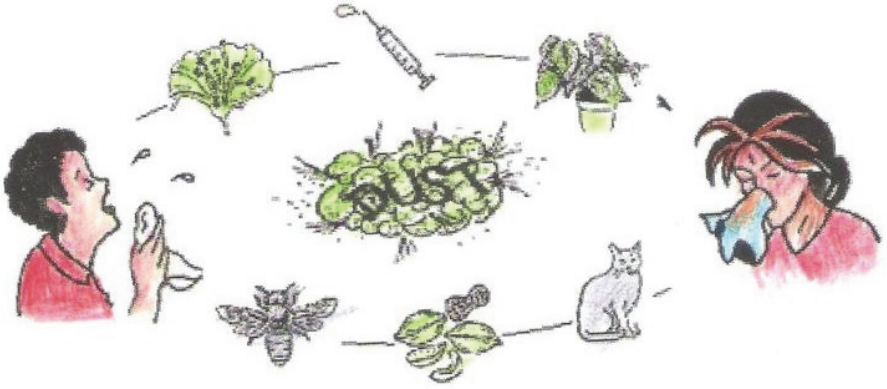

चित्र 16.3 : एलर्जी के कारक

जीवाणु = आँखों से न दिखने वाले सूक्ष्म सजीव अणु
टॉक्सिन = विषैले पदार्थ
प्रतिपिंड = विशेष रोगाणुओं से लड़ने के लिए शरीर के भीतर बनने वाले पिंड
लसिका ग्रंथि = प्रतिपिंड बनाने वाली कोशिकाओं की ग्रंथि
इन्फ़्लूएंजा = फ़्लू; विषाणुओं द्वारा फैलने वाला बुखार
चेचक = एक बीमारी, जिसमें शरीर पर फफोले से उठते हैं
तत्काल = तुरंत; फ़ौरन; उसी समय
स्मरण-शक्ति = याद रखने की क्षमता
टीका = किसी विशेष बीमारी से बचाव के लिए शरीर के भीतर पहुँचाए जाने वाला पदार्थ; वैक्सीन
पोलियो = एक बीमारी, जिसमें प्रायः हाथ या पैरों में लकवा मार जाता है
टिटेनेस = एक प्राणलेवा बीमारी, जिसमें शरीर का तंत्रिका-तंत्र बेकार हो जाता है
डिफ़्थीरिया = एक घातक बीमारी, जिसमें गला जकड़ जाता है और साँस रुकने लगती है
हैजा = उल्टी-दस्त की बीमारी
टाइफ़ाइड = मियादी बुखार
क्षय रोग = यक्ष्मा, टी.बी.
प्रविष्ट कराना = अंदर घुसाना या पहुँचाना

है। इसी प्रकार, कुछ व्यक्तियों के लिए पेंसिलीन जैसी जीवनदायिनी औषधि भी जानलेवा सिद्ध हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में हम कहते हैं कि व्यक्ति को अमुक वस्तु माफ़िक नहीं आती अथवा उस पदार्थ से उसे एलर्जी है। एलर्जी पैदा करने वाले पदार्थ अधिकतर ऐसे प्रोटीन होते हैं, जो शरीर के लिए सदा पराए बने रहते हैं। रक्त या ऊतकों में पहुँचने पर इन बेमेल प्रोटीनों को हमारा शरीर किसी प्रकार बाहर निकाल फेंकने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में शरीर उनके निराकरण के लिए प्रतिपिंड बनाता है, लेकिन ये प्रतिपिंड रोगाणुओं के प्रतिपिंडों से कुछ भिन्न होते हैं। इन पराए प्रोटीनों से शरीर के पहले संपर्क पर प्रतिपिंड बनने लग जाते हैं। कुछ समय बाद जब ये पराए प्रोटीन पुनः ऊतकों के संपर्क में आते हैं, तब प्रतिपिंडों और उनके बीच एक तीव्र प्रतिक्रिया होती है, जो रोग का रूप भी ले लेती है। शरीर में पित्ती (छपाकी) निकलना, सूजन आ जाना, साँस फूलना, दमा हो जाना – ये सब एलर्जी के ही उदाहरण हैं। मच्छर के काटने के स्थान पर दाफड़-ददोरा पड़ना, खुजली होना और लाल हो जाना भी एक प्रकार की एलर्जी ही है। जो भी हो, एलर्जी के मामले में हर व्यक्ति अलग है। वही पदार्थ एक व्यक्ति के लिए अपना कहा जा सकता है और दूसरे के लिए सर्वथा पराया। हमारे शरीर में इक्की-दुक्की कोशिकाएँ रोज़ ही कुछ ऐसे बदलती रहती हैं, जो अपनी होते हुई भी पराई बन जाती हैं और शरीर-द्रोही हो जाती हैं। विशेष प्रकार के प्रतिपिंड इन शरीर-द्रोही कोशिकाओं का दमन करके हमें सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं। किंतु, जब कभी बागी कोशिकाएँ हद से ज़्यादा बढ़ जाती हैं, तब वे कैंसर का रूप ले सकती हैं। इस प्रकार, हमने देखा कि यदि हम और हमारी जाति जीवित है, तो उसका बहुत बड़ा श्रेय अपने-पराए की पहचान को ही जाता है। इस अपने-पराए की पहचान करने और उससे जूझने के मोर्चे शरीर में जितनी ज़्यादा संख्या में हैं, उतने ही ज़्यादा वे विस्मयकारी भी हैं।

–हरसरन सिंह विश्नोई

16.2 आइए समझें

आपने यह पाठ पढ़ा, कैसा लगा ? पाठ में बताई गई बहुत-सी बातों को आप रोज़ देखते–महसूस करते हैं, लेकिन उनके कारणों को उतना नहीं जानते। विज्ञान का मूल काम यही है कि वह किसी भी कार्य के होने के कारण को तलाश करता है। इसे कार्य-कारण-संबंध कहते हैं। दुनिया में होने वाले हर कार्य का कोई-न-कोई कारण होता है। कुछ कार्य-कारण-संबंधों को हम जानते हैं, कुछ को नहीं। विज्ञान हमारी जानकारी के क्षेत्र का विस्तार करता है। विज्ञान की अनेक शाखाएँ हैं; जैसे–भौतिक विज्ञान (फ़िज़िक्स), रसायन विज्ञान (कैमिस्ट्री), जीव विज्ञान (बायोलॉजी) आदि। विज्ञान की ऐसी ही एक विशेष शाखा है–आयुर्विज्ञान, जिसे आप मेडीकल साइंस के नाम से भी जानते हैं। जीव-विज्ञान हमें प्राणियों की शारीरिक संरचना, व्यवहार आदि के विषय में बताता है, जबकि आयुर्विज्ञान रोग, रोग के कारण, रोग के लक्षण, रोग के उपचार

टिप्पणी

तदुपरांत = उसके बाद
एलर्जी = किसी पदार्थ का शरीर के माफ़िक (अनुकूल) न होना
प्रोटीन = भोजन का एक आवश्यक और मूलभूत तत्त्व
निराकरण = दूर करना; निवारण
तीव्र = तेज़
पित्ती = शरीर पर लाल रंग के ददोरे या चकत्ते पड़ना
दमा = साँस की बीमारी
शरीर-द्रोही = शरीर के प्रति विद्रोह करने वाली; शरीर को नुकसान पहुँचाने वाली
बागी = विद्रोही
कैंसर = शरीर की कोशिकाओं की असंतुलित वृद्धि से उत्पन्न लाइलाज बीमारी
विस्मयकारी = आश्चर्यजनक

(इलाज) आदि के विषय में जानकारी देता है। इस पाठ में हम कुछ शारीरिक व्यवस्थाओं और रोगों से लड़ने की क्षमताओं का परिचय पाते हैं। आइए, अब हम इनके बारे में थोड़ा विस्तार से समझें। समझने की सुविधा के लिए इस पाठ को पाँच अंशों में बाँटा गया है।

16.2.1 अंश -1 आपकी उँगली में ..... बाहर निकाल फेंके

इस अंश में शरीर के कुछ अंगों और बाहरी वस्तुओं के प्रति उनके व्यवहार के विषय में बताया गया है। इन अंगों में त्वचा, आँख, नाक, जीभ, आमाशय और आँत शामिल हैं। पहले चार अंग शरीर के बाहरी भाग हैं, जबकि आमाशय और आँत शरीर के भीतरी अंग हैं। आइए, पहले हम शरीर के बाहरी अंगों के विषय में कुछ बातें जान लें।

आप जानते हैं कि दुनिया की सारी चीज़ें (पिंड) मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं–**सजीव** यानी जिनमें जीवन है और **निर्जीव** यानी जिनमें जीवन नहीं है। विज्ञान की भाषा में हम इन्हें **चेतन** (सजीव) और **जड़** (निर्जीव) कहते हैं। आपको पता है कि चेतन और जड़ में मुख्य अंतर क्या होता है ? आइए, जान लें कि चेतन और जड़ पिंडों में मूल अंतर दो ही हैं :

1. चेतन पिंड वे होते हैं, जो बाहरी वातावरण से अपने लिए कुछ ग्रहण करते हैं और बदले में कुछ निस्सृत करते हैं अर्थात् निकालते हैं।
2. ये बाहरी वातावरण से अपनी सुरक्षा का प्रयत्न भी करते हैं।

   चेतन पिंडों के ये दोनों लक्षण जड़ पिंडों में नहीं पाए जाते।

व्यापक रूप में मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े आदि समस्त प्राणी और सारी वनस्पतियाँ (पेड़, पौधे, झाड़ियाँ, घास आदि) चेतन हैं और इनके अतिरिक्त दुनिया की प्रत्येक वस्तु जड़ है।

अब हम समझ ही गए कि चेतन या सजीव पिंड का एक प्रमुख लक्षण होता है – बाहरी वातावरण से अपनी सुरक्षा का प्रयत्न। मनुष्य का शरीर भी चेतन पिंड है, इसलिए इसकी संरचना भी कुछ इस तरह की है कि यह अपने लिए हानिकर चीज़ों से अपनी रक्षा का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न को हम शरीर की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते हैं। लेखक ने इस बात को सहज रूप से समझाने के लिए कहा है कि शरीर जानता है कि क्या अपना है अर्थात् कौन-कौन-सी चीज़ें उसके लिए लाभकारी हैं और क्या

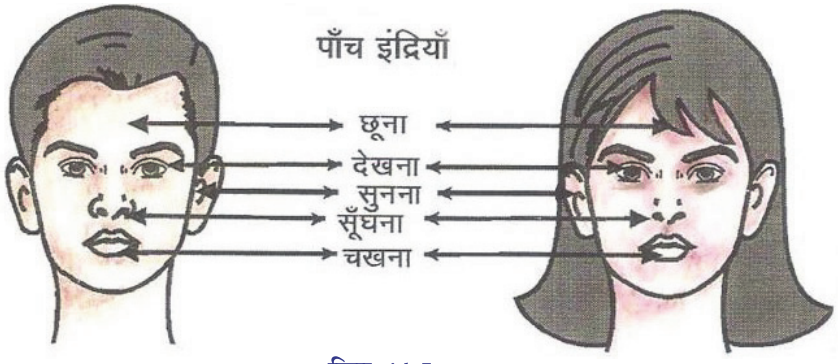

चित्र 16.5

टिप्पणी

पराया है अर्थात् कौन-सी चीज़ें उसके लिए हानिकारक हैं। शरीर के लिए इस अपने-पराए का निर्णय करने का काम मस्तिष्क (दिमाग) का होता है।

ऊपर आपने शरीर के चार बाहरी अंगों के बारे में पढ़ा है, इनमें कान को और जोड़ लीजिए। तो कुल हुए पाँच – त्वचा, आँख, नाक, कान और जीभ। ये हमारे शरीर के अन्य अंगों से विशिष्ट हैं। इस विशिष्टता के कारण इन्हें मात्र अंग न कहकर इंद्रियाँ कहा जाता है। इंद्रियाँ दो प्रकार की होती हैं–ज्ञानेंद्रियाँ और कर्मेंद्रियाँ। ज्ञानेंद्रियाँ, जो हमें ज्ञान कराएँ और कर्मेंद्रियाँ, जिनके द्वारा हम कर्म करते हैं। उल्लिखित पाँचों इंद्रियाँ ज्ञानेंद्रियाँ हैं। त्वचा से हम ठंडे-गर्म, गीले-भीगे-सूखे, गोल-चौकोर आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। आँख से रूप, रंग और आकार का बोध होता है। नाक से गंध (सुगंध और दुर्गंध या ख़ुशबू और बदबू) का पता चलता है। जीभ से हमें किसी पदार्थ के स्वाद यानी मीठे, नमकीन, कड़वे आदि होने का बोध होता है। कान हमें स्वर और शब्द की पहचान कराते हैं। ये पाँचों इंद्रियाँ ढेर सारी छोटी-बड़ी तंत्रिकाओं (बहुत ही बारीक नसों) द्वारा मस्तिष्क से जुड़ी होती हैं। इन तंत्रिकाओं को संवेदन-तंत्रिकाएँ कहते हैं। जैसे ही हम किसी बाहरी वस्तु के संपर्क में आते हैं, हमारी ये इंद्रियाँ अपने-अपने संदेश इन संवेदन-तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क को भेज देती हैं। मस्तिष्क बहुत तेज़ी से एक साथ कई काम करता है। वह इन संदेशों को समझता है, उन्हें स्मृति में रख लेता है, पहले के संदेशों के आधार पर उनका विश्लेषण करता है और 'क्या करना है' का निर्णय लेकर तंत्रिका-तंत्र के माध्यम से उचित कर्मेंद्रियों को आदेश भेजता है। इस आदेश का पालन हमारी कर्मेंद्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह आदि) तुरंत करती हैं और वापस मस्तिष्क को सूचना भेजती रहती हैं। जिन पर, अगर आवश्यक हुआ तो, मस्तिष्क नया आदेश भेजता है, वरना उस अनुभव को भी अपने स्मृति-कोष में रख लेता है।

त्वचा में काँटा गड़ने पर गाँठ के द्वारा उसका वहीं घिर जाना और बाद में सूखकर निकलना, आँख में कण के जाने पर आँसू द्वारा उसे बहाकर फेंकना, नाक में कुछ जाने पर छींकों के द्वारा तेज़ हवा से उसे बाहर निकाल फेंकना, जीभ का स्वाद के आधार पर उसे अस्वीकार कर थूक देना– इन सभी प्रतिक्रियाओं को आप इस संदर्भ से आसानी से समझ सकते हैं। ये प्रतिक्रियाएँ केवल उन्हीं चीज़ों के लिए होती हैं, जो हमारे इस शरीर को नुकसान पहुँचा सकती हैं। लाभकारी चीज़ों को तो स्वीकार कर ही लिया जाता है।

अब शरीर के भीतरी अंगों की बात करें। मुख्यतः दो तरह से हम अपने जीवन को चलाने का काम करते हैं। एक, साँस लेकर यानी वातावरण में मौजूद वायु में से जीवनदायिनी ऑक्सीजन गैस को ग्रहण करके व कार्बन डाई ऑक्साइड जैसी हानिकर गैस को बाहर करके। दूसरे कुछ खा-पीकर यानी शरीर के स्वस्थ बने रहने के लिए आवश्यक प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, वसा (फ़ैट), खनिज लवण आदि पदार्थों

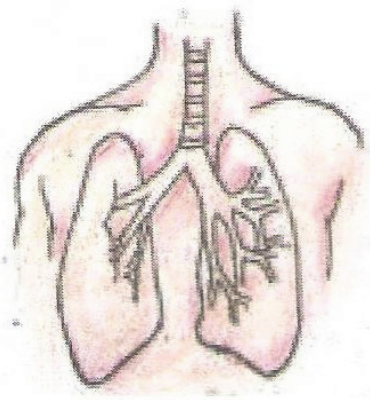

चित्र 16.6

को ग्रहण करके व शेष को मल-मूत्र-त्याग द्वारा बाहर करके। साँस, नाक से होकर वायुनली द्वारा फेफड़ों तक पहुँचती है और उल्टे क्रम में वापस नाक से बाहर निकल जाती है। भोजन, मुँह से भोजन-नली द्वारा आमाशय(पेट) तक पहुँचता है। यहाँ शरीर के कई अंग, जैसे – यकृत (लिवर), पित्ताशय (गॉल ब्लैडर), आँतें, गुर्दा (किडनी) आदि अपने-अपने काम को अंजाम देते हैं। भोजन में से ऊपर बताए गए आवश्यक और लाभदायक पदार्थों को छाँटकर अलग कर लिया जाता है और उनसे रक्त आदि के निर्माण का काम शुरू हो जाता है। कई बार जब हम आवश्यकता से अधिक खाते हैं या भोजन में कुछ अनचाहे और नुकसानदायक पदार्थ शामिल हों, तो हमारा पेट उसे जल्दी-से-जल्दी बाहर फेंकने में लग जाता है। उल्टी और दस्त होने का यही कारण है। इसीलिए, लेखक ने जीभ और आमाशय को द्वारपाल कहा है, जैसे चौकीदार परिचित या सज्जन व्यक्ति को आदर सहित घर के अंदर आने देता है और चोर-उचक्कों-उठाईगीरों को भगाकर घर को सुरक्षित रखता है। इसी कारण, इन शारीरिक प्रतिक्रियाओं को सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ कहा गया है। ये बाहरी, बेमेल और हानिकारक तत्त्वों से शरीर की सुरक्षा करती हैं, उन्हें शरीर में घुल-मिल जाने से रोकती हैं।

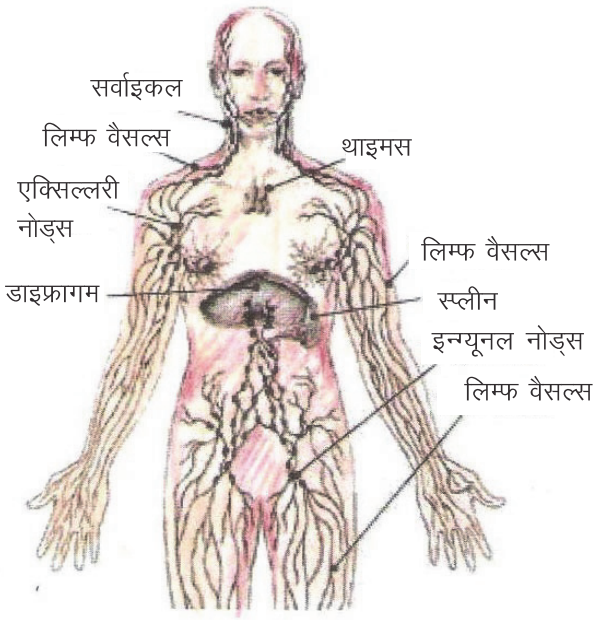

चित्र 16.7

पाठगत प्रश्न-16.1

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. अभी आपने पाँच ज्ञानेंद्रियों की जानकारी प्राप्त की। निम्नलिखित में से कौन-सा कार्य ज्ञानेंद्रियाँ नहीं कर सकतीं :

(क) सूँघना ☐ (ख) खाना ☐

(ग) सुनना ☐ (घ) देखना ☐

टिप्पणी

2. शरीर में अपनी अनेक सुरक्षा व्यवस्थाएँ हैं, तो बताइए कि छींक आने और नाक से पानी बहने से हमें–

(क) हानिकर पदार्थों से मुक्ति मिलने की संभावना होती है ☐

(ख) नाक में तकलीफ़ और जलन होती है ☐

(ग) कहीं बाहर जाने पर अपशकुन होता है ☐

(घ) मौसम के बदलने की सूचना मिलती है ☐

3. मस्तिष्क का कार्य नहीं है –

(क) पूर्व सूचनाओं के आधार पर नई जानकारी का विश्लेषण ☐

(ख) नई सूचनाओं को स्मृति-कोष में सुरक्षित करना ☐

(ग) शरीर के लिए आवश्यक ऑक्सीजन का अवशोषण करना ☐

(घ) कर्मेंद्रियों को स्थिति के अनुरूप कार्य करने का आदेश देना ☐

क्रियाकलाप-16.1

(क) हाथ हम धोएँ ज़रूर बीमारी रहे कोसों दूर
– इस स्लोगन में निहित संदेश को वैज्ञानिक तरीके से समझाइए:

.....

.....

.....

चित्र 16.8

16.2.2 अंश - 2 *वातावरण में असंख्य रोगाणु ... सक्रिय हो जाती हैं*

यह तो आप जानते ही हैं कि सजीव पिंड आकार में बहुत बड़े से लेकर बहुत छोटे तक होते हैं। कुछ तो इतने छोटे होते हैं कि हम उनको आँख से नहीं देख पाते। इन्हें देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के असंख्य छोटे जीवाणु (बैक्टीरिया) हवा में उपस्थित रहते हैं और हमारी साँस और आहार द्वारा ये शरीर में पहुँचते रहते हैं। इन जीवाणुओं में कुछ जीवाणु रोगों को फैलाने वाले होते हैं, जिन्हें 'रोगाणु' कहा जाता है। कुछ विषैले रोगाणु 'वाइरस' या 'विषाणु' भी कहलाते हैं। कुछ जीवाणु शरीर के लिए फ़ायदेमंद भी होते हैं, जैसे दही के जीवाणु। आप जानते

ही होंगे कि दूध में विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं की वृद्धि से ही दही बनता है।

चूँकि, यह तय करना मुश्किल है कि कौन-सा जीवाणु शरीर के लिए घातक सिद्ध हो सकता है, इसलिए साफ़ हवा में साँस लें, साफ़ पानी पिएँ और भोजन में खाई जाने वाली कच्ची वस्तुओं को अच्छी तरह से साफ़ पानी से धो लें या फिर उबाल लें। अधिकांश जीवाणु तेज़ ताप को सह नहीं पाते। अतः कोई भी उबली हुई चीज़ प्रायः संक्रमण-रहित होती है, यानी उसके द्वारा रोग के घुस बैठने या फैलने की संभावना नहीं रहती।

आपने पढ़ा कि वातावरण में मौजूद ये रोगाणु अनेक प्रकार से हमारे शरीर में घुसने की कोशिश करते हैं। हमारे शरीर में असंख्य कोशिकाएँ (सेल) होती हैं। एक प्रकार की अनेक कोशिकाएँ मिलकर ऊतक बनाती हैं। शरीर में ऊतकों की संख्या भी अनगिनत होती है। शरीर में पहुँचे रोगाणु इन कोशिकाओं और ऊतकों को खाना शुरू कर देते हैं और खा-पीकर प्रजनन द्वारा, यानी संतान उत्पन्न करके ये अपनी संख्या भी बढ़ाने लगते हैं। रोगाणुओं के संक्रमण से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है आदमी बीमार पड़ जाता है।

लेकिन, रोगाणुओं का शरीर में घुस आना इतना आसान भी नहीं है। हमारी शारीरिक संरचना कुछ-कुछ किले जैसी है। लेखक ने इस अंश में और आगे के अंशों में भी शरीर को एक किले के रूप में और रोगाणुओं को शत्रु-सेना के रूप में प्रस्तुत करके इस जटिल विषय को आसान बना दिया है। सबसे पहले त्वचा को देखें। हमारी त्वचा मुख्यतः दो काम करती है। एक तो यह हमारे शरीर में नमी बनाए रखती है। दूसरे, वातावरण में मौजूद इन रोगाणुओं को शरीर के भीतर कोशिकाओं तक पहुँचने से रोके रखती है। रोगाणु त्वचा पर चिपककर रह जाते हैं, जो नहाते समय साबुन में मौजूद तत्त्वों से मर जाते हैं और पानी के साथ बह जाते हैं। कई बार, साबुन न होने पर हम राख या साफ़ मिटटी से रगड़कर भी हाथ धोते हैं। उससे भी पूरी तरह न सही, लेकिन बड़ी संख्या में ये रोगाणु त्वचा से हट जाते हैं। इस तरह देखें, तो त्वचा किले की बाहरी दीवार का काम करती है, यानी शत्रु-सेना को भीतर प्रवेश नहीं करने देती।

जैसे किले में कई द्वार होते हैं और उन द्वारों पर पहरेदार रहते हैं, ऐसे ही हमारे शरीर में भी नाक और मुँह होते हैं। नाक से साँस का आना-जाना होता है और मुँह से भोजन-पानी का। ये दो मुख्य प्रवेश-द्वार हैं। रोगाणु इनके द्वारा यदि शरीर में प्रवेश पाना चाहें, तो उसके लिए भी कुछ प्रतिरक्षात्मक (बचाव करने वाली) व्यवस्थाएँ हैं। प्रत्येक देश दुश्मन की फ़ौजों के लिए अपनी सीमाओं पर चौकसी रखता है, जिसे प्रतिरक्षा कहते हैं। देश की तरह ही शरीर भी प्रतिरक्षा के मामले में ख़ासा चौकस होता है। सबसे पहले नाक की बनावट को देखें। फेफड़ों तक हवा को एक सुरंग जैसे रास्ते से जाना होता है, जिसे हम नासिका-छिद्र के नाम से जानते हैं। आम भाषा में इन्हें नथुने कहते हैं। नासिका-छिद्र में ढेर सारे बाल होते हैं। इसकी आकृति लगभग त्रिभुजाकार होने के कारण, ये बाल हवा में मौजूद धूल के कणों या जीवाणुओं को ऐसे ही रोक देते हैं, जैसे छलनी चाय की पत्ती को या फ़िल्टर पेट्रोल की अशुद्धियों को।

टिप्पणी

बालों के अतिरिक्त नाक से लेकर साँस की नली और फेफड़ों तक एक लसलसा (चिपचिपा) पदार्थ मौजूद रहता है। विज्ञान की भाषा में इसे श्लेष्मा कहा जाता है। इस चिपचिपे श्लेष्मा में रोगाणु चिपक जाते हैं, जिन्हें हम नाक साफ़ करते समय बाहर कर देते हैं अथवा नाक अपने आप हवा के झटके के साथ इसे बाहर फेंक देती है, जिसे छींक आना कहते हैं। खाँसी के साथ बलगम (कफ़) का बाहर आना भी इसी प्रक्रिया का एक हिस्सा है।

नाक की ही तरह मुँह से प्रवेश करने वाले रोगाणुओं के लिए भी कुछ प्रतिरक्षात्मक व्यवस्थाएँ हैं। मुँह में बनने वाली लार भोजन को सुपाच्य बनाने के साथ-साथ इन रोगाणुओं को भी कुछ हद तक समाप्त कर देती है। इसकी पकड़ में न आ पाने वाले रोगाणुओं को आमाशय में मौजूद अम्ल (एसिड) मार डालता है। शेष बचे रोगाणुओं को हमारे पेट में मौजूद पानी अपने घेरे में लेकर मूत्र के रूप में बाहर कर देता है। इसीलिए बड़े-बुजुर्ग और चिकित्सक(डॉक्टर) हमें ख़ूब पानी पीने की सलाह देते हैं। अधिक मात्रा में साफ़ पानी पीकर हम अपने शरीर रूपी किले को बिना नुकसान पहुँचाए रोगाणुओं को बाहर का रास्ता दिखा देते हैं। इसलिए, पेशाब की जगह को साफ़ और सूखा रखना भी अति आवश्यक है। शौचालय के प्रयोग के पश्चात गुप्तांगों को स्वच्छ पानी से धोकर अच्छी तरह सुखा लें, इसके पश्चात् अपने हाथों को साबुन या राख से अच्छी तरह धो लें। किसी भी प्रकार की कोताही होने पर मल एवं मूत्र से निष्कासित रोगाणु जननांगों को संक्रमित कर सकते हैं।

तो, इस तरह हमने पाया कि हमारे शरीर की प्रतिरक्षा-व्यवस्था काफ़ी ठीक-ठाक है और जहाँ तक संभव होता है, रोगाणुओं को ऊतकों के संपर्क में नहीं आने देती। लेकिन, त्वचा के कटने-फटने या भीतरी अंगों में किसी परत के कट-फट जाने पर ये रोगाणु ऊतकों के संपर्क में आ सकते हैं। विषाणु (वाइरस) तो ख़ुद ही इतने समर्थ होते हैं कि उन्हें कटने-फटने की प्रतीक्षा नहीं करनी होती। वे समस्त परतों को भेदते हुए भीतर घुस जाते हैं। यहाँ से हमारे शरीर की दूसरे स्तर की प्रतिरक्षा-व्यवस्थाएँ सक्रिय हो उठती हैं, जैसे देश में आतंकवादियों के आ जाने पर रेड अलर्ट हो जाता है।

पाठगत प्रश्न-16.2

1. निम्नलिखित कथनों के सामने सही (√) और गलत (×) का निशान लगाइए :

(क) लार भोजन को सुपाच्य तो बनाती ही है, रोगाणुओं को भी समाप्त कर देती है। ☐

(ख) हमारी त्वचा पसीने द्वारा शरीर की नमी को नष्ट कर देती है। ☐

(ग) बहुत-सी कोशिकाएँ मिलकर ऊतकों का निर्माण करती हैं। ☐

(घ) नाक में रहने वाले श्लेष्मा के सहारे रोगाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। ☐

टिप्पणी

(ङ) पानी पीने से शरीर में रोगाणुओं की उपस्थिति कम हो जाती है। ☐

(च) शौचालय जाने के बाद गुप्तांगों को साफ़ पानी से धोकर सुखाने से संक्रमण से बचा जा सकता है। ☐

16.2.3 अंश - 3 *"अनेक संक्रमण..... व्यवस्थाएँ सक्रिय हो जाती हैं"*

आपने देखा होगा कि अगर किसी चोट वगैरह से या छुरी आदि से हमारी त्वचा कट जाती है, तो सामान्यतः दो-तीन दिन में वहाँ त्वचा की नई परत बन जाती है। इस बीच हमें उस स्थान को रोगाणुओं से बचाकर रखना होता है। इसलिए, त्वचा के कट-फट जाने पर हम उसे धूल के कणों, वायु और पानी से बचाते हैं; उसे ढँककर रखते हैं। कई बार सावधानी बरतने के लिए हम कोई एंटीसेप्टिक क्रीम अथवा उसके उपलब्ध न होने पर देशी घी वगैरह लगा लेते हैं। यदि त्वचा की इस परत पर, चोट की जगह रोगाणुओं का प्रवेश हो जाए, तो फिर शरीर की प्रतिरक्षा-व्यवस्था अपना काम शुरू कर देती है।

आप जानते ही हैं कि हमारे शरीर के सभी हिस्सों में रक्त का संचरण (ख़ून का दौरा) होता रहता है। रक्त में रोगों से लड़ने की क्षमता रखने वाली श्वेत कणिकाएँ मौजूद होती हैं। शरीर के किसी भाग में रोगाणुओं का पता चलते ही उस तरफ़ रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है। अधिक संख्या में श्वेत कणिकाओं को पहुँचाने के लिए ही ऐसा होता है। ये श्वेत कणिकाएँ रोगाणुओं को घेर लेती हैं और उनसे युद्ध आरंभ कर देती हैं। रोगाणुओं और श्वेत कणिकाओं के इस युद्ध में दोनों कम या अधिक मात्रा में नष्ट होते हैं और किसी एक की जीत होती है। अगर जीत श्वेत कणिकाओं की होती है, तो नष्ट हुए रोगाणु, श्वेत कणिकाएँ और उस स्थान के ऊतक मवाद के रूप में बाहर निकल जाते हैं और संक्रमण वाले स्थान पर नई त्वचा आ जाती है। अगर यह लड़ाई लंबी चलती है और हार-जीत का फ़ैसला नहीं हो पाता, तो मवाद बढ़ने लगता है और मवाद की लगातार मौजूदगी के कारण उस स्थान पर नई त्वचा नहीं आ पाती और हमें श्वेत कणिकाओं की मदद के लिए बाहर से मदद लेनी पड़ती है। यह मदद एंटीसेप्टिक मरहम (क्रीम) या एंटीबायटिक दवाओं या दोनों के रूप में लेनी होती है।

लेकिन, यदि हम यह काम समय से नहीं करते और रोगाणु अधिक ताकतवर होते हैं, तो वे श्वेत कणिकाओं को नष्ट करके आगे बढ़ने लगते हैं और ऊतक-तरल में घुस जाते हैं। आप पढ़ चुके हैं कि एक ही प्रकार की कोशिकाओं से ऊतक बनते हैं। इन ऊतकों में एक तरल पदार्थ रहता है, जिसे ऊतक-तरल कहते हैं। नसों की दीवार इन ऊतकों से बनी होती है। ऊतक-तरल पहले तो अपनी ही बारीक-बारीक नलियों(नसों) में बहता है, फिर अंततः रक्त में मिल जाता है। रोगाणुओं के ऊतक-तरल से रक्त में पहुँचने से पहले शरीर की एक और प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था सक्रिय हो जाती है। हाथ में कहीं पर भी फोड़ा-फुँसी हो या चोट लगे, तो बगल में; पैर में होने पर जाँघ में और गले

टिप्पणी

में किसी संक्रमण के होने पर गले में कुछ गिलटियाँ फूल जाती हैं। इन गिलटियों में कुछ ऐसी कोशिकाएँ होती हैं, जो ऊतक-तरल से रक्त की ओर बढ़ने वाले रोगाणुओं को खा जाती हैं। इसी खा जाने के गुण के कारण लेखक ने उन्हें भक्षक कोशिकाएँ कहा है। अगर रोगाणु इन भक्षक कोशिकाओं के काबू में भी नहीं आते, तो वे रक्त में प्रवेश कर जाते हैं। चूँकि, रक्त हमारे सारे शरीर में संचरण करता है, इसलिए ये रोगाणु भी सारे शरीर में फैल जाते हैं और ऊतकों को खा-खाकर अपनी ताकत और संख्या बढ़ाते जाते हैं और फिर अधिक ऊतकों को चट करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में रोगी की दशा गंभीर होने लगती है। इसीलिए, गिलटी फूलने तक तो हमें किसी डॉक्टर तक अवश्य ही पहुँच जाना चाहिए। वैसे तो शरीर के किसी भी असामान्य लक्षण को देखते या महसूस करते ही हमें किसी चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।

पाठगत प्रश्न-16.3

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. नसों की दीवार बनी होती है–

(क) कोशिकाओं से ☐ (ख) तरल त्वचा से ☐

(ग) कच्चे माँस से ☐ (घ) तरल ऊतकों से ☐

2. रक्त की श्वेत कणिकाएँ–

(क) रोगाणुओं का भोजन बन जाती हैं ☐ (ख) रोगाणुओं को ऊतक तरल तक पहुँचाती हैं ☐

(ग) रोगाणुओं से लड़ती हैं ☐ (घ) निष्क्रिय रहती हैं ☐

16.2.4 अंश - 4 *कई प्रकार के रोगाणुओं के प्रति ..... रोग से बचा लेते है।*

पिछले अंश में आपने पढ़ा कि ऊतक-तरल से रोगाणुओं के रक्त की ओर बढ़ने पर भक्षक कोशिकाएँ उनका संहार करती हैं, लेकिन कुछ रोगाणु इतने प्रबल होते हैं कि भक्षक कोशिकाएँ उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पातीं। ये रोगाणु विषैले होते हैं। इनमें से जो विष निकलता है, वह उल्टे भक्षक कोशिकाओं को ही नष्ट कर डालता है। इन विषैले रोगाणुओं को 'विषाणु' या 'वाइरस' कहते हैं और इनके संक्रमण को आयुर्विज्ञान की भाषा में विषाणु-संक्रमण या 'वाइरल इन्फ़ैक्शन' कहा जाता है। इनके विष को टॉक्सिन कहते हैं। शरीर की प्रतिरक्षा-व्यवस्था अब अपनी अंतिम लड़ाई लड़ती है। इन विषाणुओं का निर्माण कर लेती है। विज्ञान की भाषा में ये रासायनिक अणु 'प्रतिपिंड' या 'एंटीबॉडी' कहलाते हैं। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, ये किसी पिंड के प्रतिपक्ष में बनने वाले पिंड होते हैं अर्थात् किसी ख़ास किस्म के विषाणुओं के विरुद्ध मोर्चा बनाने वाले पिंड। इसीलिए, इन प्रतिपिंडों में सिर्फ़ एक ही प्रकार के विषाणुओं से लड़ने का सामर्थ्य होता है। आसान भाषा में कहें,

टिप्पणी

तो एक किस्म के प्रतिपिंड एक ही बीमारी से लड़ सकते हैं, जिनके विरुद्ध उनका निर्माण हुआ हो। इसलिए, हर बीमारी के लिए अलग-अलग किस्म के प्रतिपिंडों की आवश्यकता होती है। हमारे शरीर में अनेक ग्रंथियाँ (ग्लैन्ड्स) होती हैं। इन्हीं में से एक प्रकार की ग्रंथि लसिका-ग्रंथि होती है। इस लसिका-ग्रंथि की कोशिकाओं से ही प्रतिपिंडों का निर्माण होता है।

अब आप समझ गए होंगे कि शरीर में प्रतिपिंड तैयार अवस्था में नहीं होते। अधिकांश प्रतिपिंड रोग का संक्रमण होने पर ही तैयार होते हैं। अगर, हम थोड़े या ज़्यादा बीमार होकर फिर स्वस्थ हो जाते हैं, तो ये प्रतिपिंड हमारे शरीर में अलग-अलग समय तक के लिए बने रहते हैं। पुनः संक्रमण होने की स्थिति में ये तुरंत सक्रिय हो जाते हैं और विषाणुओं से टक्कर लेकर उन्हें मार डालते हैं। प्रत्येक रोग के प्रतिपिंड के शरीर में बने रहने की समयावधि अलग-अलग होती है। फ़्लू या वाइरल बुखार के प्रतिपिंड कुछ सप्ताह तक ही रह पाते हैं, चेचक या माता के प्रतिपिंड दस से पंद्रह वर्ष तक बने रहते हैं, जबकि क्षय रोग या टी.बी. के प्रतिपिंड सारी उम्र बने रहते हैं। हैं न कमाल के ये प्रतिपिंड। इतना लंबा समय बीतने पर भी अपने दुश्मन विषाणु को तुरंत पहचान लेते हैं !

राष्ट्रीय टीकाकरण योजना

टीके	आयु				
	जन्म	6 सप्ताह	10 सप्ताह	14 सप्ताह	9-12 महीने
प्रारंभिक टीके					
बीसीजी	✓				
पोलियो दवा	✓	✓	✓	✓	
डीपीटी		✓	✓	✓	
हेपेटाइसिस बी		✓	✓	✓	
हैजा					✓
बूस्टर दवा					
डीपीटी, पोलियो दवा	16 से 24 माह				
डीटी	5 वर्ष				
टेटिनस टॉक्साइड (टीटी)	10 वर्ष एवं पुनः 16 वर्ष				
विटामिन ए	9, 18, 24, 30 और 36 महीने				
गर्भवती महिला					
टेटिनस टॉक्साइड : पहला	गर्भधारण के बाद यथाशीघ्र				
टेटिनस टॉक्साइड : दूसरा	पहली बार के 1 महीने बाद				
बूस्टर	3 महीने का अंतर				

टिप्पणी

यह भी जानें

आइए, अब कुछ बात की जाए इन प्रतिपिंडों की जानकारी से हुए आयुर्विज्ञान के विकास पर। प्रतिपिंडों के इस सिद्धांत के आधार पर चिकित्साशास्त्रियों ने विभिन्न रोगों से बचाव के लिए टीके (वैक्सीन) तैयार कर लिए हैं। इन टीकों के द्वारा शरीर में संबंधित रोग के कमज़ोर किए गए रोगाणु अथवा रोगाणुओं के विष को हल्का करके शरीर में पहुँचा दिया जाता है। हमारा शरीर उस विष से लड़ने के लिए प्रतिपिंड बनाने लगता है। इन रोगाणुओं को समाप्त कर चुकने के बाद भी प्रतिपिंड शरीर में मौजूद रहते हैं और जब वास्तव में इन रोगों का संक्रमण होता है, तब ये प्रतिपिंड उनसे लड़कर हमारे शरीर को रोग से बचा लेते हैं। आज अनेक रोगों के टीके विकसित किए जा चुके हैं। आइए एक तालिका के माध्यम से जानें कि कौन-सा टीका कब लगना चाहिए:

पाठगत प्रश्न-16.4

दिए गए विकल्पों में से उचित विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. टीकों के माध्यम से शरीर में पहुँचाए जाते हैं–

   (क) एंटीबायटिक ☐ (ख) रोगाणुओं के विष ☐

   (ग) विटामिन ☐ (घ) प्रतिपिंड ☐

2. डिफ़्थीरिया रोग शरीर के किस अंग में होता है :

   (क) आँख में ☐ (ख) नाक में ☐

   (ग) कान में ☐ (घ) गले में ☐

3. एड्स में–

   (क) शरीर पर बड़े-बड़े रिसने वाले ज़ख़्म हो जाते हैं।

   (ख) शरीर की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था कमज़ोर होने लगती है।

   (ग) शरीर में प्रतिपिंडों की अधिकता हो जाती है।

   (घ) शरीर की कोशिकाओं में असामान्य वृद्धि हो जाती है।

16.2.5 अंश - 5

हमने पाठ के शुरू में पढ़ा है कि बहुत-सी वस्तुओं से शरीर की सुरक्षा-व्यवस्थाएँ सक्रिय हो जाती हैं। इन बहुत-सी वस्तुओं में से अधिकांश के प्रति तो सभी मनुष्य-शरीर एक-सा व्यवहार करते हैं। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जो आमतौर पर मानव-शरीर द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं, पर कुछ व्यक्तियों के शरीर उन्हें ग्रहण नहीं करते। आमतौर पर, भोजन और दवाओं में कुछ ऐसी चीज़ें भी होती हैं, जिन्हें एक शरीर आसानी से अवशोषित कर लेता है, जबकि दूसरा उसे अपना हिस्सा नहीं बना पाता। जैसे, अधिकांश लोगों को दूध या अंडा सेहतमंद बनाता है, जबकि कुछ लोगों को इससे भी परेशानी होती है, उनको या तो उल्टी आ जाती है या पेट में दर्द होने लगता है या फिर दस्त लग जाते हैं। इसी तरह, कुछ लोगों को बैंगन, मसूर की दाल, फल अथवा कोई सामान्य-सी अन्य वस्तु परेशान करती है। ऐसी ही परेशानी कुछ लोगों को एनलजीन, पेंसिलीन या कुछ अन्य विशिष्ट दवाओं से भी होती है। साधारण भाषा में हम इसे उस खाद्य पदार्थ या दवा का माफ़िक न आना कहते हैं। विज्ञान की भाषा में माफ़िक न आने की इस विशेषता को **एलर्जी** कहा जाता है।

आप यह तो जानते ही हैं कि हमारे भोजन में प्रोटीन एक आवश्यक तत्त्व है, पर क्या आप यह जानते हैं कि सभी पदार्थों में एक-सा प्रोटीन नहीं होता, यानी अलग-अलग पदार्थों में अलग-अलग प्रकार के प्रोटीन होते हैं। कुछ प्रोटीन ऐसे भी होते हैं, जिन्हें किसी-किसी व्यक्ति का शरीर स्वीकार नहीं करता। ये प्रोटीन उसके लिए सदा पराए बने रहते हैं। पहली बार इन प्रोटीनों के संपर्क में आने पर शरीर उन्हें निकाल फेंकने की कोशिश करता है। इस कोशिश में शरीर उन प्रोटीनों के विरुद्ध रोग के प्रतिपिंडों से कुछ भिन्न प्रकार का प्रतिपिंड बनाता है। जब ये प्रोटीन फिर से हमारे शरीर के ऊतकों तक पहुँचते हैं, तो इन प्रतिपिंडों और प्रोटीनों के बीच तेज़ लड़ाई होती है, जो कभी-कभी रोग का रूप भी ले लेती है। शरीर में पित्ती उछलना, ददोरे पड़ जाना, सूजन आना, साँस फूलना, दमा हो जाना इस एलर्जी के ही लक्षण हैं। भोजन और दवा के अतिरिक्त मच्छरों या दूसरे कीड़ों के काटने पर भी एलर्जी हो जाती है। जैसा कि हम जान चुके हैं, एलर्जी व्यक्ति-विशेष के शरीर का मामला है। प्रत्येक व्यक्ति का शरीर एलर्जी के मामले में दूसरे से भिन्न होता है।

आपने पढ़ा है कि हमारे शरीर में कोशिकाएँ नियमित रूप से बनती रहती हैं। इस प्रक्रिया में कई बार कुछ ऐसी कोशिकाएँ भी बन जाती हैं या कुछ कोशिकाएँ इस रूप में भी परिवर्तित हो जाती हैं, जो शरीर का अंग होते हुए भी शरीर-विरोधी होती हैं। यानी, वे अपनी होते हुए भी विद्रोही होने के कारण बिल्कुल पराई बन जाती हैं। इनके विद्रोही स्वभाव के विरुद्ध भी शरीर विशेष प्रकार के प्रतिपिंड बना लेता है और उनके द्वारा इन विद्रोही कोशिकाओं को नष्ट करके स्वयं को सुरक्षित कर लेता है। लेकिन, कभी-कभी ये विद्रोही कोशिकाएँ असामान्य रूप से विकसित हो जाती हैं और शरीर

टिप्पणी

इनसे लड़ने में असमर्थ होने लगता है। ऐसी स्थिति में ये कैंसर का रूप भी धारण कर सकती हैं। जैसे पान, बीड़ी, सिगरेट, गुटखा आदि में ऐसे पदार्थ होते हैं, जो शरीर के लिए अनचाहे होते हैं और जब शरीर इनसे लड़ने में असमर्थ हो जाता है, तो विद्रोही कोशिकाएँ पैदा हो जाती हैं और ये गाँठ या रसौली का रूप धारण कर कैंसर को जन्म देती हैं।

निष्कर्ष

इस पाठ को पढ़ने के बाद हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि हमारे शरीर की अपने-पराए की पहचान करने की शक्ति असीमित है। इसी शक्ति के कारण यह शरीर बाहरी वातावरण से हमारी सुरक्षा करता है। यद्यपि हमारा शरीर आश्चर्यजनक रूप से अपने बलबूते ही अपनी सुरक्षा का प्रयत्न करता है, फिर भी हमें रोगों से लड़ने के लिए इन प्रतिरक्षा-व्यवस्थाओं पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। मनुष्य के पास चूँकि मस्तिष्क है, जिससे उसने न सिर्फ़ अपने शरीर के सामर्थ्य को पहचान लिया है और रोगों की पहचान कर ली है; बल्कि उसने अपने शरीर की सीमाओं को भी पहचाना है, उसके सामर्थ्य को बढ़ाने के तरीके भी विकसित किए हैं और रोगों का उपचार करना भी सीखा है। अतः, अपने शरीर के सामर्थ्य का ज्ञान हासिल करने के साथ-साथ हमें मानव-मस्तिष्क की आयुर्विज्ञान-संबंधी उपलब्धियों यानी चिकित्सा का भी भरपूर उपयोग करना चाहिए। रोग के लक्षण महसूस होते ही चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए, उसके निर्देशानुसार नियमित रूप से दवाएँ खानी चाहिए और परहेज़ करना चाहिए।

अंततः, यह कहना ही उचित होगा कि मनुष्य को अपने मन और शरीर को दृढ़ बनाये रखने के उपाय लगातार करते रहना चाहिए। एक पुरानी कहावत है कि 'तन सुखी तो मन सुखी, पहला सुख नीरोगी काया।' जहाँ यह सही है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है, वहीं यह कहना भी उचित होगा कि स्वस्थ मन शरीर को भी नीरोग बनाये रखने में मददगार होता है। मन का स्वास्थ्य तभी बना रह सकता है, जब हम और हमारे आसपास के लोग; वातावरण और खाद्य-पदार्थ स्वच्छ, असंक्रमित और आनंददायी हों। इसलिए, 'सबकी मुक्ति में अपनी मुक्ति' की युक्ति ही सबसे कारगर है।

पाठगत प्रश्न-16.5

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. शरीर में ददोरे पड़ जाने पर आप –

   (क) अधिक मात्रा में पानी का सेवन करेंगे ☐

   (ख) प्रोटीन को बढ़ाने की कोशिश करेंगे ☐

टिप्पणी

(ग) एलर्जी के लिए डॉक्टर से सपंर्क करेंगे ☐

(घ) नष्ट होने का इंतजार करेंगे ☐

2. निम्नलिलिखित में से सही और गलत कथन छाँटिए:

(क) शरीर कुछ प्रोटीन ग्रहण नहीं कर पाता ☐

(ख) एलर्जी हर किसी को एक जैसी होती है ☐

(ग) शरीर में कुछ विद्रोही कोशिकाएँ भी पैदा हो जाती हैं ☐

(घ) रोगों से लड़ने के लिए शरीर की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था पर भरोसा करना चाहिए ☐

16.3 व्यावहारिक भाषा प्रयोग

आपने इस पाठ को पढ़ा। आपने महसूस किया होगा कि पुस्तक के अन्य पाठों की अपेक्षा इसकी भाषा भिन्न है। हाँ, ठीक ही महसूस किया। यह पाठ साहित्यिक पाठ नहीं है। यह विज्ञान विषय से संबंधित है। जैसे आम बोलचाल की भाषा से साहित्यिक और राजकाज की भाषा भिन्न होती है, वैसे ही विज्ञान-संबंधी विषय की भाषा भी भिन्न होती है। साहित्य की भाषा में कल्पना और सृजन की सुंदरता होती है, जबकि विज्ञान की भाषा तर्क और प्रयोग पर आधारित होती है। विज्ञान की भाषा में पारिभाषिक शब्दों का अनेक बार प्रयोग किया जाता है। इस तरह की भाषा को वैज्ञानिक भाषा भी कहते हैं।

आपने पाठ के शुरू में पढ़ा था कि विज्ञान में किसी भी काम का कोई-न-कोई कारण होता है। यदि एक क्रिया है, तो उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। इसलिए, विज्ञान की भाषा में वाक्य-संरचनाओं में भी कार्य-कारण संबंध होता है। आपने इस प्रकार के कई वाक्य इस पाठ में पढ़े हैं। उदाहरण के लिए–''छींक आना और नाक से पानी बहना शरीर की स्वाभाविक प्रतिरक्षात्मक प्रक्रियाएँ हैं'' ''जो रोगाणु आगे पहुँच जाते हैं, उन्हें आमाशय अपने अम्ल से नष्ट कर देता है'' ''कभी-कभी काँख या जाँघ में गिलटी बन जाती है, यह तभी बनती है, जब हाथ या पैर में कोई फोड़े-फुंसी जैसा संक्रमण हो।''

उक्त सभी वाक्यों में किसी-न-किसी कार्य का कोई-न-कोई कारण है। छींक आना या नाक से पानी बहने की प्रक्रिया परिणाम है– प्रतिरक्षात्मक प्रक्रिया का। इसी प्रकार, दूसरे वाक्य में "कुछ रोगाणु यदि आमाशय में पहुँचते हैं, तो वहाँ उपस्थित अम्ल उन्हें नष्ट कर डालता है", यानी समाप्त कर देता है।

यूँ तो, किसी भी विषय पर बोलते या लिखते समय उस विषय की आवश्यकता के अनुसार भाषा के रूप में कुछ परिवर्तन आ जाता है, पर विज्ञान के विषय का विश्लेषण करने के लिए हमें विज्ञान-संबंधी वस्तुओं, संकल्पनाओं, परिभाषाओं और अवधारणाओं के लिए विशेष प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। विषय-संबंधी इन अवधारणापरक

टिप्पणी

शब्दों को **पारिभाषिक शब्द** कहते हैं। प्रायः पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग उसी विषय या उससे संबंधित मिलते-जुलते विषयों में ही किया जाता है। इस पाठ में विज्ञान और आयुर्विज्ञान या चिकित्साशास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, उदाहरण के लिए :

आमाशय, अवशोषित, रोगाणु, वायुनली, बलगम, आहारनली, विषाणु, श्वेत-कणिकाएँ, ऊतक-तरल, टान्सिल, भक्षक कोशिकाएँ, जीवाणु, टॉक्सिन, प्रतिपिंड, लसिका-ग्रंथि, इन्फ़्लूएंजा, चेचक, टीका, पोलियो, टिटेनेस, डिफ़्थीरिया, हैजा, टाइफ़ाइड, क्षय रोग, एलर्जी, प्रोटीन, पित्ती, दमा, कैंसर आदि।

कुछ वैज्ञानिक शब्दावली आपने पढ़ी, अब कुछ पारिभाषिक शब्दावली देखिए :

ऊतक – एक जैसा काम करने वाली कोशिकाओं के समूह से बने पिंड

प्रजनन – अपने जैसे जीवों को जन्म देने की प्रक्रिया

श्लेष्मा – चिपचिपा लसदार पदार्थ, जो नाक से बहकर निकलता है

प्रतिपिंड – विशेष प्रकार के रोगाणुओं से लड़ने के लिए शरीर में बने पिंड

आप भी इसी प्रकार के पारिभाषिक शब्द पाठ में से चुनिए और यहाँ लिखिए:

.....

.....

.....

.....

.....

आप ऊपर के शब्दों पर विचार करें, तो पाएँगे कि इनमें अधिकांश शब्द सामान्यतः विज्ञान या चिकित्साशास्त्र के अतिरिक्त अन्य विषयों में प्रयुक्त नहीं होते या फिर होते भी हैं, तो भिन्न अर्थों में होते हैं। जैसे 'टीका' शब्द का अर्थ चिकित्साशास्त्र में रोग से बचाव करने वाला वैक्सीन है, जबकि आमतौर पर 'टीका' का अर्थ माथे पर लगा तिलक या सगाई-समारोह होता है और साहित्य में तथा आम भाषा में इसका अर्थ आलोचना भी होता है।

चूँकि, आज़ादी से पहले हमारे देश की राजभाषा और शिक्षा तथा अनुसंधान की भाषा अंग्रेज़ी थी, इसलिए हिंदी भाषा में पारिभाषिक शब्दों का प्रायः अभाव था। आज़ादी के बाद हिंदी को ज्ञान-विज्ञान तथा राजकाज की समर्थ भाषा बनाने के सरकारी और गैर-सरकारी तौर पर प्रयास हुए। इन प्रयासों में विभिन्न विषयों के लिए पारिभाषिक शब्दों का चुनाव किया गया, साथ ही, नए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण भी किया गया।

हिंदी में अधिकतर अंग्रेज़ी के शब्दों के स्थान पर हिंदी शब्द खोजे और बनाए गए। हिंदी में प्रचलित शब्दों के साथ-साथ संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं से शब्दों को खोजा गया। इनके अभाव में उपसर्ग तथा प्रत्ययों के प्रयोग से भी अनेक शब्द बनाए गए। एक धारणा यह भी रही कि अंग्रेज़ी के अधिक प्रचलित शब्दों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया जाए। जैसे–ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साइड, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि।

आपने क्या सीखा

- हमारे शरीर की कुछ सामान्य सुरक्षा-व्यवस्थाएँ हैं, जो पहले स्तर पर ही अनचाही और हानिकर वस्तुओं अथवा रोगाणुओं को भगाकर उनसे अपनी सुरक्षा कर लेती हैं।
- रोगाणुओं से स्वयं को बचाने के लिए हमें स्वच्छ हवा, साफ़ पानी तथा अच्छी तरह धोकर या पकाकर ही खाद्य-सामग्री का प्रयोग करना चाहिए। नित्य अच्छी तरह नहाना चाहिए तथा कुछ खाने-पीने से पहले अच्छी तरह हाथ धो लेने चाहिए।
- हमारे रक्त में श्वेत-कणिकाएँ होती हैं, जो रोगाणुओं से लड़ती हैं। श्वेत कणिकाओं की कमी होने पर रोग बढ़ जाता है।
- बगल(काँख) और जाँघ में बन जाने वाली गिलटियाँ तथा गले की टॉन्सिलें रोगाणु को रक्त तक पहुँचने से रोकने वाली भक्षक कोशिकाओं को जन्म देती हैं; साथ ही, यह भी बताती हैं कि रोग अधिक गंभीर हो सकता है, अतः चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।
- थोड़े बीमार होकर ठीक हो जाने पर हमारे शरीर में उस रोग से लड़ने के प्रतिपिंड तैयार हो जाते हैं, जो पुनः उस रोग का संक्रमण होने पर उसका मुकाबला करते हैं।
- प्रतिपिंड बनने के सिद्धांत पर टीकों का निर्माण किया जाता है। टीके हमारे शरीर में उस रोग से लड़ने के लिए प्रतिपिंड तैयार कर देते हैं। आज अनेक रोगों से बचाव के टीके बन चुके हैं। बच्चे के जन्म के फ़ौरन बाद से ही हमें उसको टीके अवश्य लगवाने चाहिए।
- कुछ बीमारियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनके अभी न टीके हैं, न उनको पूरी तरह समाप्त करने वाला इलाज। 'एड्स' ऐसी ही बीमारी है, जिसमें रोगी के शरीर की प्रतिरोध-क्षमता धीरे-धीरे समाप्त होती जाती है। एड्स एच०आई०वी० वायरस के संक्रमण से होता है। यह संक्रमण संक्रमित व्यक्ति के ख़ून या उससे यौन-संबंधों के ज़रिये दूसरे तक पहुँचता है। एड्स रोगी के प्रति समाज को प्रेम और सहानुभूति का भाव रखना चाहिए।

- किसी वस्तु (खाद्य-पदार्थ या दवा आदि) के प्रति शरीर की अरुचि या अस्वीकार्यता को एलर्जी कहते हैं। एलर्जी के लक्षण हैं–पित्ती उछलना, ददोरे पड़ना, लाल-लाल निशान पड़ना, सूजन हो जाना, दर्द होने लगना, साँस फूलना आदि।
- हमारा बाह्य वस्तुओं से संपर्क जल, वायु, मिट्टी और खाद्य-पदार्थों के माध्यम से होता है, अतः ये ही संक्रमण के माध्यम भी बनते हैं, इसलिए हमें अपने पर्यावरण को स्वच्छ रखना चाहिए व उसे प्रदूषणरहित बनाये रखने का हर प्रयत्न करना चाहिए।
- आम बोलचाल की भाषा तथा अन्य भाषा-रूपों से विज्ञान की भाषा भिन्न होती है। विज्ञान की भाषा में सीधे, स्पष्ट, सहज शब्दों और कार्य-कारण संबंध को स्पष्ट करने वाली वाक्य-संरचना का प्रयोग किया जाता है।
- किसी विषय-विशेष में प्रयोग होने वाले अवधारणापरक या संकल्पनात्मक शब्दों को पारिभाषिक शब्द कहते हैं। जैसे– श्लेष्मा, ऊतक, ऊतक-तरल, पिंड आदि।

योग्यता विस्तार

आजकल काली खाँसी, खसरा, हेपेटाइटिस-ए, हेपेटाइटिस-बी आदि के टीके उपलब्ध हैं और नए-नए टीके विकसित किए जा रहे हैं। बच्चे के जन्म के समय प्रायः डॉक्टर टीकों की एक तालिका माँ-बाप को देते हैं, जिसमें टीकों का नाम और लगवाने के समय का उल्लेख होता है, जिसे चित्र द्वारा समझाया गया है। अपने नज़दीक के किसी डॉक्टर से इसे प्राप्त कीजिए और उसका अध्ययन कीजिए। समझने में कठिनाई होने पर उचित व्यक्ति/विद्वान से जानकारी लीजिए। पत्र-पत्रिकाओं के स्वास्थ्य- स्तंभों/विशेषांकों का नियमित अध्ययन कीजिए।

पाठांत प्रश्न

1. ज्ञानेंद्रियों से क्या अभिप्राय है ?
2. कुछ खाने-पीने से पहले हाथों को अच्छी तरह क्यों धोना चाहिए ?
3. 'श्लेष्मा' किसे कहते हैं और इसका क्या काम होता है ?
4. 'अपना पराया' पाठ में शरीर रूपी दुर्ग की बाहरी दीवार किसे कहा गया है और क्यों ?
5. बगल (काँख) या जाँघ में गिलटियाँ क्यों फूल जाती हैं ?
6. वाइरस से लड़ते/लड़ती हैं–

   (क) श्वेत कोशिकाएँ (ग) प्रतिपिंड

   (ख) ऊतक (घ) टॉक्सिन

7. एच०आई०वी० संक्रमित व्यक्ति को–
   (क) समाज से प्रेम की आवश्यकता है।
   (ख) समाज से दूर रहना चाहिए।
   (ग) अपने पाप की सज़ा मिलती है।
   (घ) अन्य लोगों को नहीं छूना चाहिए।
8. टीके किस सिद्धांत पर कार्य करते हैं, कुछ वाक्यों में समझाइए।
9. 'टीके' लगवाना क्यों ज़रूरी है ? ऐसे आठ रोगों के नाम लिखिए, जिनके टीके उपलब्ध हैं।
10. एड्स किस वायरस से और कैसे संक्रमित होता है?
11. पारिभाषिक शब्दावली से आप क्या समझते हैं ?
12. 'अपना-पराया' पाठ में प्रयुक्त किन्हीं आठ पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख कीजिए।

उत्तरमाला

बोध प्रश्न

(1) ग (2) ग (3) क

पाठगत प्रश्न

16.1 – (1) ग (2) क (3) ग

16.2 – (1) (क) सही (ख) गलत (ग) सही (घ) गलत (ङ) सही (च) सही

16.3 – (1) घ (2) ग

16.4 – (1) (ख) (2) (घ) (3) (ख)

16.5 – (1) (ग) (2) (क) सही (ख) गलत (ग) सही (घ) गलत